व / २०५

२६

WP 1.2

व / ६३

ज्ञानयोगरहस्य

57

ज्ञान योग रहस्य

[दूसरा भाग]

लेखक —

श्री श्री १०८ श्री गुरू महाराज श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ
ज्ञान योग ईशावास्यादिकों के कर्त्ता
श्री पण्डित अनन्तराम जी ब्रह्मचारी

प्रकाशक—

पण्डित चिरञ्जी पहलवान रिवाड़ी वाले
परशुराम दङ्गल, कुर्सियाघाट, देहली।
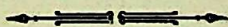
१००० प्रति] १९४१ [मूल्य ।≈)

ज्ञान योग रहस्य

॥ दूसरा भाग ॥

इसमें ईश, केन, कठ व ऋग्वेद के १०वें मंडल से अहंग्रह उपासना मंत्रों सहित छंदों में मुमुक्षुजनों के लिए प्रकाशित किया है। पढ़कर लाभ उठावें।
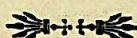
लेखक—

श्री श्री १०८ श्री गुरू महाराज श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ ज्ञान योग ईशावास्यादिकों के कर्त्ता

श्री पण्डित अनन्तराम जी ब्रह्मचारी
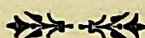
प्रकाशक—

पण्डित चिरञ्जी पहलवान, रेवाड़ी वाले

परशुराम दंगल कुर्सिया घाट देहली।

सहायक—

श्रीभक्त शिरोमणि ला० राधेलाल जी

रोहतगी देहली।

१००० प्रति] १९४१ [मूल्य ।≤)

पं० अनन्तराम रविदत्त शर्म्मा के सद्धर्म प्रेस, चरखेवालान, देहली में छपा।

पुस्तक मिलने का पता—

अनन्त चिरञ्जी पुरुषोत्तम वेदान्त पुस्तकालय,

परशुराम दंगल या केदाराश्रम, कुदसिया घाट, देहली।

॥ भूमिका ॥

सर्व सज्जनों को विदित हो कि हिन्दू धर्म में वेद, उपनिषद्, गीता और वेदान्त दर्शन सबको मान्य हैं। यह जानकर मेरी भी भावनायें इस ओर झुकीं और परमेश्वर से प्रार्थना की कि मेरी भी समझ में ये आवें। उसी समय परमात्मा ने मेरी प्रार्थना स्वीकार की और मेरे ऊपर दया करके स्वयं श्री अनन्तराम जी ब्रह्मचारी के रूप में आ प्रगट हुए और मैं इस विषय से नितान्त अनभिज्ञ था और साधारण हिन्दी उर्दू जानता था। श्री गुरु महाराज ने अति प्रेम से मुझ अनभिज्ञ को समझाने के लिए इन धर्म ग्रन्थों में जो जो गहन विषय थे उनको छंदों में तथा वाणियों में परिणत कर दिया यानी उपनिषद्, गीता, वेदान्त दर्शन में से तथा और महात्माओं की टीकाओं से लेके गद्य व पद्य में ये पुस्तकें तैयार कर दीं। पंचीकरण, स्वप्न विज्ञान, अध्यात्म विज्ञान, अनिर्वचनीय, ख्याति विज्ञान, शंकर दिग्विजय, अनंत अनुभव वाणी ये सब मुझे बोध कराने के लिए अद्वैतवाद के सिद्धान्त में छंदों और पदों में मुझे समझाये जिसके समझने से मुझे बहुत लाभ हुआ। मैंने विचारा कि इनसे और लोगों यानी मुमुक्षुजनों को लाभ होना चाहिये। मैंने ये ग्रन्थ अद्वैतवाद के शिरोमणि विद्वान् महात्माओं को सुनाये, उनमें से २ के मुख्य नाम ये हैं:—श्री श्री १०८

श्री स्वामी अनन्तप्रकाशजी उदासीन विरक्तमंडली के मंडलेश्वर व श्री श्री १०८ श्री स्वामी नरसिंहगिरिजी मंडलेश्वर निरंजनी अखाड़ा व श्री श्री १०८ श्री स्वामी विष्णुदेवानंदजी मंडलेश्वर कैलाश आश्रम ऋषीकेश और श्री श्री १०८ श्री दंडी स्वामी ओंकाराश्रम जी तथा इनके अतिरिक्त और भी विद्वानों को सुनाया व दिखाया तो सबकी यह सम्मति हुई कि इनको छपा देना चाहिए जिससे अधिकारी मुमुक्षुजनों को लाभ हो पर इन सब को एकदम निकलवाने में बहुत व्यय की आवश्यकता है यह सोच कर क्रमशः प्रकाशित कराना आरंभ कर दिया। परमेश्वर की कृपा और आप सब की सहानुभूति हुई तो सब प्रकाशित हो जावेंगे। इसमें श्री लाला राधेलाल जी ने धर्मार्थ धन से सहायता दी है व पहिले भी ईशावास्य भाष्य का ग्रन्थ छपवा चुके हैं। इसी तरह कोई और महापुरुष भी धर्मार्थ धर्म पुस्तकों को छपवाकर आप भी लाभ उठावें व दूसरों को भी कृतार्थ करें।

॥ इति ॥

निवेदकः—

चिरञ्जी पहलवान

रेवाड़ी वाले।

॥ अथ ऋग्वेद-मंडल २२९ वां नासदीय सूक्त ॥

मंत्र—ना सदा सीन्नो सदा सीत्तदानीं,
ना सीद्र जो नो व्योमा परोयत् ।
किमा वरीवः कुह कस्य शर्मन्नम्भः
किमासीद्र गहनं गभीरम् ॥

ऋ० १० मं० १२६ सूक्त ॥

छं०—न सत ही था तब न असत था तब,
न ऊपर गगन था न नीचे गगन था ।
कहो किस ने किस पर फिर आवर्ण डाला,
ये गंभीर और गहन", जल भी कहां था ।

मंत्र—न मृत्यु रासीद मृतं न तर्हि,
न रात्र्या अह्न आसीत्प्रकेतः ।
आनीद वातं स्वधया तदेक,
तस्माद्धान्यन्न परः किंचनाऽऽस ॥

२ ऋ० अ० १६ ॥

छं०—न मृत्यु ही थी तब अमरता कहाँ थी,
न दिन रात के था समझने का साधन ।
वायू बिना स्वांस लेता सुधा से,
उसके परे और कुछ भी नहीं था ।

मन्त्र—तम आसीत्तमसा गूढ मग्रेऽ,
प्रकेतं सलिलं सर्वमा इदम् ।
तुच्छे नाभ्वपिहितं तदासीत्,
तपसस्तन्महिनाऽजायतेकम् ॥
ऋ० मं० १० । ३ मं०

छ०-अंधेरा सा था कुछ या तमसे था आवृत,
ये पानी था पहिले जो ये कह रहे हैं ।
या माया ने था ब्रह्म को ढाप रखा,
तपस्या से प्रगटे के पीछे की बातें ।

मन्त्र—कामस्तदग्रे समवर्वत ताधि,
मनसो रेतः प्रथमं यदासीत् ।
सतो बंधु मसति निरविन्दन्,
हृदि प्रतीष्या कवयो मनीषा ॥
ऋ० मं०१० । ४ मं० ॥

छ०-सब से प्रथम काम उत्पन्न हुआ है,
हुआ काम से पीछे पौदा मनों का ।
उस अव्यक्त से व्यक्त ब्रह्माण्ड भासा,
ये कर खोज पूरी कहा योगियों ने ।

मंत्र—तिरश्चीनो विततो रश्मिरेशाम्,
अधः स्विदासीदुपरि स्विदासीत् ।
रेतोधा आसन् महिमान् आसन्,
स्वधः अवस्यात् प्रयति परस्तात् ॥
ऋ० मं० १० । मं० ५ ॥

छ०-ये संकल्प धागा या रश्मि सा फैला,
तब अधः ऊर्ध्व का है ये संसार भासा।
रहा संकल्प बिम्ब के ही सहारे,
जगत की तरफ़ पेड़ बन बन के आये।

श्रुति—को अद्धा वेद क प्रवोचत्,
कुत आ जाता कुत अयं विसृष्टिः।
अर्वाग् देवा अस्य विसर्ज नेना-
थ को वेद यत आ बभूव।
ऋ० मं० १० शु० ६।

छ०-को जानता फिर ये किस्सा कहै कौन,
किसने बनाया और कब बना है।
हुवे देवता सृष्टि के पीछे पैदा,
वो पहिले की रचना को क्या कह सकेंगे।

श्रुति—इयं विसृष्टिर्यत अबभूव,
यदि वा दधे यदि वा न।
यो अस्याध्यक्षः परमे व्योमन्,
सो अंग वेद यदि वा न वेद॥
ऋ० मंडल १०।७ सूक्त

छ०-अव्यक्त से व्यक्त जब से हुआ है,
नहीं इसको जाना है जाहिर किसी ने।
हिरण्यगर्भ जो इस जगत का पति है,
वो जानता है या संभव नहीं भी॥

छ०—कब से बनी और किसने बनाई,
ये न जानने से तेरी क्या है हानी।
तू मिथ्या समझ जगत सच आत्मा को,
खुला मोक्ष का द्वार सन्मुख है तेरे ।
पड़ा साँप गोदी में गर आन करके,
विचारो न कुछ उसको फौरन ही फेंको।
न फेंकोगे छाटोगे कानून अपना,
तो काटेगा काला मरोगे दुखी हो ॥
यही माया अव्यक्त से व्यक्त होना,
जो संकल्प का सांप बन के बसी है।
इसे जान सपना न फिर कुछ विचारो,
विचारो सदा एकता आत्मा की ॥
है बंध्या के लड़के का किस्सा ही झूठा,
करो जिक्र झूंठे का ना अन्त आवे।
जो माया की रचना को कहने को बैठें,
तो ब्रह्मा जी ना शेषना शेष पावें ॥
सकल नाम रूपों को मिथ्या समझकर,
प्रिय अस्ति भांति से मन को मिलावे।
झूँठे विचारों की धारा अगम है,
अगर पार पावें तो क्या हाथ आवे ॥

कठ उ०। द्वि० अ०। ४ वल्ली। मं० ९-१०-११-१२ तक।

अग्नि जो एक जग में बसी है,
मिले जिसमें उसमें वही रूप धारा ।
सर्वभूत में ऐसे एक आत्मा है,
सब रूपों में प्रति रूप हो भासता है ॥

वायू है ज्यों एक जग में विचरती,
सभी में वह सब रूप हो कर के भासै ।
वायू में होती न खुशबू न बदबू,
तू वायू सा निर्लेप लख आत्मा को ॥
है जैसे रवि एक अगणित हैं चक्षू,
प्रकाशै है न उनके धरमों से नाते ।
असंख्यात मन इमि चलाता है चेतन,
नहीं पाप और पुण्य से कुछ न ताल्लुक ॥
सर्व भूत में एक ही शिव बसा है,
वही एक से आप अगणित हुवा है ।
जो निज आत्मा को समझते हैं शासक,
वह ज्ञाता अटल सुख में और सब दुखी हैं ॥

———:o:———

जो नित पाठ करके विचारैगा इसको,
वही पार होगा इस झूँठे जगत् से ।
वो ही शिव सच्चिदानन्द होगा,
ये अनन्त चिरंजी कहैं वेद मत से ॥

॥ इति ॥

॥अथ ईशावास्योपनिषत से अहंग्रह उपासना प्रारंभ॥

ॐ पूर्ण मदः पूर्ण मिदं पूर्णात् पूर्ण मुदच्यते ।
पूर्णस्य पूर्ण मादाय, पूर्ण मेवावशिष्यते ॥

छ०—पूरण है ये पूरण है वो, पूरण की पूरण ज्योति है।
पूरण को पूरण ग्रहण कर, पूरण ही केवल होति है ॥
जैसा जिसे विश्वास हो वैसा ही वो फल पायगा।
निश दिन शिवोऽहं गान कर शिव रूप तू हो जायगा ॥१॥

श्रुति—ॐ ईशा वास्य मिद ँ सर्वं यत्किंच,
जगत्याम् जगत् ।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा, मागृधः कस्य स्विद्धनम्
॥१॥ यजुर्वेद अ०४॥

छ०—अपने सहित संसार को, गोविन्द करके जान तू।
सब में समझ कर आपको, उपकार पर दे जान तू॥
सब के घड़े मिट्टी के हैं, मेरा क्या पत्थर रूप है।
जग ब्रह्म है तो आत्मा, मेरा भी ब्रह्म स्वरूप है ॥१॥

मंत्र—कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छत ँ समाः।
एवं त्वयि नान्यथे तोऽस्ति,न कर्म लिप्यते नरे॥२॥

छ०—जानेका है यह सबूत मत उपकार से मुँह मोड़ तू।
कहें वेद सारे कर्म कर, फल वासना को छोड़ तू ॥
मोहि जान कर सब कर्म कर, करता न तू बनियो कहीं।
मेरी शरण बिन और जग में मुक्ति का रस्ता नहीं ॥२॥

मंत्र-असुर्या नामते लोका, अन्धेन तमसावृताः।
तांस्ते प्रेत्याभि गच्छन्ति येके चात्महनो जनाः॥३॥

छ०—मैं साची हूं देह में जीते जी मुझको न मार तू।
मैं देह हूं नहिं आत्मा दे प्राण पर न विचार तू॥
उन नास्तिकों को भेजता, मैं हो असुरिया लोक हूं।
हूं काल का भी काल मैं, शुद्धात्मा निश्शोक हूं ॥३॥

मंत्र—अनेजदेकं मनसो जवीयो
नैनद्देवाआप्नुवन्पूर्वमर्षत् ॥
तद्धावतोऽन्यानत्येति तिष्ठ तस्मिन्नपो
मातरिश्वादधाति ॥४॥

छ०—एक अविचल मन से भी, अति शीघ्र गामी जानिये।
अरु इन्द्रियें नहिं पा सकें, अति क्रमण करता मानिये॥
ये इन्द्रियां जहाँ जायेंगी, पहले वहाँ मौजूद है।
सब भागने वालों के ये आगे हि चलता कूद है॥
उससे डरें पानी पवन, इन्द्रादि सारे देव हैं।
विश्वास करके जान तो तू आत्मा स्वयमेव हैं॥४॥

मंत्र—तदेजति तन्नैजति, तद्दूरे तद्वन्तिके,
तदन्तरस्य सर्वस्य, तदु सर्वस्यास्य बाह्यतः ॥५॥

छ०—वह चल अचल वह दूर सब से, निकट उसका बास है।
वह छिप रहा सोने सपर, जेवर में करत प्रकाश है॥
यह जीव जग तो धूप और, प्रतिबिंब सम मम शक्ति है।
शिव राम सीता कृष्ण राधा- करते मेरी भक्ति हैं॥५॥

मंत्र—यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्ये वानु पश्यति॥
सर्व भूतेषु चात्मानं, ततो न विजुगुप्सते॥६॥

छ०—जो सर्वभूतों को है निश्चै, ब्रह्म करके जानता।
राव में और रंक में नहिं भेद किंचित् मानता॥
भूतों का केवल नाम है सब रूप है भगवान का।
जो जानता इसको न उससे तत्व छिपता ज्ञान का॥६॥

मंत्र—यस्मिन्सर्वाणि भूतान्या त्मैवा भूद्विजानतः॥
तत्र को मोहः कः शोक, एकत्वमनु पश्यतः॥७॥

छ०—हैं भूत व्यापक ब्रह्म में और ब्रह्म भूताकार है।
जिम बर्फ पानी से जमें, इमि ब्रह्म से संसार है॥
जो बर्फ को पानी और ब्रह्म को जग जानता।
वह शोक मोह किससे करै, जो ब्रह्म सबको मानता॥७॥

मंत्र—योऽसावसौ पुरुषः सोऽहमस्मि॥८॥

छ०—मैं वह पुरुष हूं ज्योति जिसकी सूर्य में है चमकती।
चेतन्य मय सत्ता मेरी चर अरु अचर में दमकती॥
मैं वह पुरुष हूं ज्योति जिसकी, चर अचर में प्रकाशती।
जहां हो सतोगुण की अधिकता, साफ वहां पर भासती॥

सामान सत्ता से मेरी अज्ञान से है दोस्ती ॥
जब विशेष जानेगा मुझे, तब ही परम पावे गती ॥८॥

इति श्री ईशावास्य उपनिषद् से अहंग्रह उपासना समाप्तम् ॥
और केन सामवेदीय तलवकार उपनिषद् से अहंग्रह उपासना प्रारंभ ॥

॥ अथ केन सामवेदीय तलवगार उपनिषद्द से अहंग्रह उपासना प्रारंभ ॥

मंत्र-ॐ केनेषितं पतति प्रेषितं मनः,
केन प्राणः प्रथमः प्रैति युक्तः ॥
केनेषितां वाच मिमां वदन्ति चक्षुः,
श्रोत्रं क उ देवो युनक्ति ॥१॥

छं०—मन किस की ताकत से कहो, विषयों में दौड़ा जात है ।
ये आप ही चलता है या, इसे और कोई चलात है ॥
ऐसे ही प्राणों को प्रथम, किसने यहां नियत किया ।
इन्द्रियों को ज्ञान खुद होता है या पर का दिया ॥१॥

मंत्र—श्रोत्रस्य श्रोत्रं मनसो मनो,
यद्वाचो ह वाचꣳस उप्राणस्य प्राणः ॥
चक्षुश्चक्षु रति मुच्य धीराः
प्रेत्यास्माल्लोकादमृता भवन्ति ॥२॥

छ०—मन इन्द्रियां जड़ हैं न इनसे, हों सके कुछ काम है।
सत्ता मेरी सब कुछ करे, प्रतिबिंब जिसका नाम है॥
सत्ता ने ही नियत किये, पहिले वपू में प्राण हैं।
सत्ता में ही संसार के, सुख दुख का होता ज्ञान है॥२॥

मंत्र—न तत्र चक्षुर्गच्छति, न वाग्गच्छति नो मनो।
न विद्मो न विजानीमो यथैतदनुशिष्यात्॥३॥

छ०—आखें न मुझको देखतीं, न मन मनन करता अहो।
वाणी न उच्चारण करे, वह ही हूं मैं निर्भय कहो॥३॥

मंत्र—यद्वाचानभ्युदितं येन वागभ्युद्यते,
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिद मुपासते॥४॥

छ०—वाचा मुझे नहिं कह सकै, वाचा का मैं प्रेरक सदा।
नर नार कर व्यभिचार सुख नहिं कह सकें हैं सर्वदा॥
जिस ब्रह्म की सत्ता से वाणी करती अपना काम है।
वाणी का उत्पादक हमारा आत्मा श्री राम है॥४॥

मंत्र—यन्मनसा न मनुते, ये नाहुर्मनो मतम्॥
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि, नेदं यदिद मुपासते॥५॥

छ०—यह मन मुझे जाने नहीं, मन संकल्प मुझ से करै।
चुम्बक से चलती है सुई, पर जानती न हरे हरे॥
मन रूप सुई जड़ है मैं चुम्बक हूं चेतन आत्मा।
मन मूढ़ क्या समझे मैं हूं प्रेरक प्रभु परमात्मा॥५॥

मंत्र—यच्चक्षुषा न पश्यति, येन चक्षूंषि पश्यति,

तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि, नेदं यदिद मुपासते ॥६॥

छं०—ये नेत्र क्या देखें मुझे, ये नेत्र मेरे से दिये।
सूरज ज्यों सृष्टि प्रकाशता, नहिं सृष्टि से सूरज दिपै ॥
मुझ ब्रह्म चेतन से मिले, दोनों चमकते नैंन हैं।
जिसकी चखों में चांदनी, वह ब्रह्म ये श्रुति सैंन हैं ।६।

मंत्र—यच्छ्रोत्रेण नशृणोति, येन श्रोत्र मिदं श्रुतम्
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि, नेदं यदिद मुपासते ॥७॥

छं०—ये कान क्या मुझको सुनें, मैं ही सुनाता हूं इन्हें।
बाजे को मैं सुनता हूं पर, बाजा नहीं मुझको सुने ॥
जड़ बीनवत हैं कान मैं, चेतन बजैया चन्द हूँ।
कानों का प्रेरक शुद्ध केवल, शिव सच्चिदानन्द हूं ॥

मंत्र—यत्प्राणेन न प्राणिति येन प्राणः प्रणीयते।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि, नेदं यदिद मुपासते ॥८॥

छं०—ये प्राण मेरे से चलें, नहिं प्राण मुझको जानता।
मुझ ब्रह्म चेतन को भला, जड़ प्राण कैसे छानता।
मुझ ब्रह्म की सत्ता से चलते, प्राण ये अलबत्त हैं।
प्राण प्रेरक ब्रह्म हूं, ये सत्य है ये सत्य है ॥८॥

मन्त्र—यदि मन्यसे सुवेदेति दभ्रमे वापि नूनं,
त्वं वेत्थ ब्रह्मणो रूपं यदस्य त्वं।
यदस्य च देवेष्वथ नु मीमांस्य,
मेव ते मन्ये विदितम् ॥१॥ इति प्रथम खंड॥

छं०—द्रश्य की तरियां से मैंने, ब्रह्म को लिया जान है।
इस भांति जो कहता है वह ज्ञानी नहीं नादान है॥
क्या दीखती वस्तु है मन इन्द्रियाँ ले जान हैं।
द्रष्टा कों जाने है तभी, हो जाय सम्यक ज्ञान है॥१६॥

मन्त्र—नाहं मन्ये सुवेदेति नोन वेदेति वेद च॥
यो नस्तद्वेद तद्वेद नो न वेदेति वेद च॥
१०॥२॥

छं०—जानूं हूं मैं जानूं हूं मैं, कहता है पर जाना नहीं।
द्रष्टा है वह नहीं द्रश्य है, इस तौर पहिचाना नहीं॥

मन्त्र—इह चेद वेदी दथ सत्य मस्ति,
न चेदिहा वेदी न्महती विनष्टिः॥
भूतेषु भूतेषु विचित्यधीराः,
प्रेत्या स्माल्लोका दमृता भवन्ति॥
दूसरे खंड का ५ वां मन्त्र

छं०—नर जन्म पा जिसने लिया, मुभ्क आत्मा को जान है।
उसने सफल नर जन्म अपना कर लिया यहां आन है॥
जननी कृतारथ हो गई धन धन है वह ही वसुन्धरा।
आपको जाना तो बेड़ा पार पितरों का करा॥
खं० २-५ मन्त्र

मन्त्र—ब्रह्म ह देवेभ्यो विजिग्ये तस्य हं,
ब्रह्मणो विजये देवा अमहीयन्त।

त ऐक्षन्तास्माक मेवायं विजयो
ऽस्माकं मेवायं महि मेति ॥

खंड ३–१४ मं०

ज०–इक समय इन देवताओं को हुआ अभिमान है ।
संसार है रचना हमारी क्या करै भगवान है ॥
मुझ आत्मा को जान ये आई हँसी उपजी दया ।
समझा दूं इनको यक्ष बन के मैं स्वयं प्रगटित हुआ ॥
देवों ने देखा हमसे यह छट्टा कहां से आगया ।
नहिं भेद मुतलक पा सका अरु इन्द्र भी चकरा गया ॥

मन्त्र—तेऽग्नि मब्रुवन जात वेद एतद्विजानीह
किमेतद्यक्ष मिति तथेत्ति ।
तदभ्य द्रवत्त मभ्यत्कोऽसौ त्यग्निर्वा
अहमस्मीत्य ब्रवीज्जात वेदावाऽहमस्मीति॥

मं० २७–४

छ०–करके सलाह अग्नि से बोला इन्द्र कि तुम जाइये ।
हे जात वेदा भेद जाकर यक्ष का कुछ लाइये ॥
यक्ष के आ पास अग्नि देखकर चकरा गया ।
हिम्मत पड़ी नहिं बोलने की काल सा भाषित भया ॥
तब यक्ष ने डाटा कि तू है कौन क्यों हो चुप रहा ।
मैं जात वेदा अग्नि हूँ ये वाक्य अग्नि ने कहा ॥ खंड ४

मंत्र—तस्मिन त्वयिकिं वीर्यं मित्य पीदꣳ
सर्वं दहेयं यदिदं पृथिव्या मिति ।

तस्मै तृणं निदधावेतद्दहेति तदुप
प्रेयाय सर्वं जवेन तत्तशशाक दग्धुं ॥
स तत एव निववृते नैत दशकं
विज्ञातुं यदेतद्यक्षमिति ॥ खंड ३-१६ मं०

छ०-मैंने कहा कि जात वेदा शक्ति क्या रखते हो तुम ।
अग्नि ने डट कर के कहा मैं जगत को कर दूं भसम ॥
तुनका उठाकर यक्ष ने अग्नि के आगे धर दिया ।
तिनके को तो कर भस्म पहिले यह इशारा कर दिया ॥
पूरी पावर से भी अग्नि तृण को जब न जला सका ।
तब लौट के बोला कि मैं तो भेद कुछ नहिं पा सका ॥
इस भांति जब मुझ यक्ष से देवों ने मानो हार है ।
तब बैठ के सब देवता करने लगे ये विचार है ॥
तब ब्रह्म विद्या बुद्धि ने हो प्रगट देवों से कहा ।
ये यक्ष है मालिक तुम्हारा अभिमान सुन जाता रहा ॥
देवों को भी दुर्लभ हूं मैं फिर और कोई क्या कहे ।
कहता सो भी चक्रित हो औ जाने सो भी चक्रित रहे ॥

इति श्री तलवगार सामवेदीय केन उपनिषद् से
अहंग्रह उपासना समाप्तम् ॥

॥ अथ कठोपनिषद् से अहंग्रह उपासना प्रारम्भ ॥

मन्त्र—अन्यत्र धर्माद न्यत्रा धर्माद न्यत्रा
स्मात्कृता कृतात् ।
अन्यत्र भूताच्च भव्याच्च यत्तत्पश्यसि तद्वद ॥
द्वि० बल्ली मं० १४ ॥

छ०—जो धर्म से भी भिन्न और अधर्म से भी भिन्न है ।
कर्म कार्य काल से होता नहीं जो खिन्न है ॥

मन्त्र—सर्वे वेदा यत्पदमा मनन्ति तपा
ंसि सर्वाणि च यद्वदन्ति ।
यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति, तत्ते
पद ंसंग्रहेण ब्रवीम्योमित्ये तत् ॥
द्वि० ब० १५ मं०॥

छ०—ऊँकार का ही अर्थ लख यह वेद चारों कह रहे ।
ऊँकार के लखने को तपकर दुःख तपस्वी सह रहे ॥
ऊँकार के लखने को बनते ब्रह्मचारी वीर हैं ।
उस ओम पद का लक्ष तू ही आत्मा गम्भीर है ॥

मन्त्र – एतद्धये वाक्षरं ब्रह्म, एतद्दे वाक्षरं परम् ।
एतद्धये वाक्षरं ज्ञात्वा मो यदिच्छति तस्य तत् ॥
द्वि०ब०मं०१६॥

छ०—है ओम अक्षर ब्रह्म वो ही, ब्रह्म मैं हूं मानिये ।
है ओम् वाचक मैं हूं वाची, आत्मा पहिचानिये ॥

तीनों शरीरों और पाँचों कोशों से मैं पार हूं।
सर्वज्ञ हो जाता है जो जाने कि मैं ओंकार हूं॥

मंत्र—एतदा लम्बन थं श्रेष्ठ मेतदालम्बनं परम्।
एतदा लम्बनं ज्ञात्वा, ब्रह्म लोके महीयते॥
द्वि० व० म० १७

छ०—यह आसरा सब से बड़ा, मुझसी न नौका और है।
बिन ज्ञान ही ब्रह्म लोक तक, नर पहुँचता इस तौर है॥

मन्त्र—न जायते म्रियते वा विपश्चिन्नायं
कुतश्चिन्न बभूव कश्चित्।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो
न हन्यते हन्य माने शरीरे॥ द्वि०व०मं०१८

छ०—जन्मू हूं न मरता हूँ मैं नहीं और कारण से बना।
और ना स्वयं मैं आप ही उत्पन्न होय जग से सना॥
मोय नित्य अज सब से पुराना और सनातन मानिये।
मैं हूं अमर काया बदलती, है ये निश्चै जानिये॥

मंत्र—हन्ता चेन्मन्यते हन्तुंहतश्चेन्मन्यते हतम्।
उभौ तौ न बिजानीतो नायंहन्ति नहन्यते॥
द्वि०व०मं०१९

छ०—जो मारने वाला कहै मैंने इसे दिया मार है।
मरता है सो कह मैं मरा दोनों के भ्रान्त विचार है॥
नहिं मारने वाला कोई, कोई न मारा जाय है।
मेरी शरण में आय है तब भेद सारा पाय है॥

मन्त्र—अणोरणीयान्महतो महीयानात्मास्य
जन्तोर्निहितो गुहायाम् ।
तमक्रतुः पश्यति वीतशोको, धातुः
प्रसादान्महिमानमात्मनः॥ द्वि०व०मं० २०॥

छ०—आकाश से भी हूं बड़ा, मोय अणु से छोटा जानिये ।
अन्तःकरण रूपी गुफा में, वास मेरा मानिये ॥
पर इन्द्रियों के जीतने का फल जिसे मिल जायगा ।
बस वोही मेरे प्रसाद से मेरे को लखने पायगा ॥

मन्त्र—नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया
न बहुना श्रुतेन ।
य मेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा
विवृणुते तनूं स्वाम् । द्वि०व०मं० २२॥

छ०—मैं वेद के पढ़ने पढ़ाने से कभी मिलता नहीं ।
तप दान पुण्य समाधि से, आसन मेरा हिलता नहीं ॥
जिसको कि मैं मेरे लिये, सच मन से प्रेमी पात हूं ।
अधिकारी को सब मर्म अपना मैं स्वयं बतलात हूं ॥

मन्त्र—आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव तु ।
बुद्धिं तु सारथिं विद्धि, मनः प्रग्रहमेव च ॥
तृ०व०मं० ३॥

छ०—मैं आतमा ही रथ पै हूं, आरूढ़ निश्चय जानि तू ।
काया को रथ बुद्धि को रथ का सारथी पहिचान तू ॥
इन्द्रियें घोड़े हैं इनकी, मन लगाम है जानियें ।
विषयों के मारग में ये घोड़े दौड़ते पहिचानिये ॥

मंत्र—यस्तु विज्ञानवान्भवति, युक्तेन मनसा सदा।
तस्येन्द्रियाण्यवश्यानि दुष्टाश्वा इव सारथेः॥
तृ० व० ५ मं०॥

मंत्र—यस्तु विज्ञानवान्भवत्य, युक्तेन मनसा सदा।
तस्येन्द्रियाणि वश्यानि, सदश्वा इव सारथे॥
तृ० वल्ली मं० ६॥

छ०-ये बुद्धि रूपी सारथी, चंचल हो या नादान हो।
तो इन्द्री रूपी अश्व उसके, बस नहीं रहते अहो॥
ये बुद्धि रूपी सारथी जिसका कि होय प्रवीण है।
तब इन्द्रियों के अश्व भी, रहते सदा आधीन है॥

मंत्र—यस्त्व विज्ञानवान्भवत्यमनस्कः सदाऽशुचिः।
न स तत्पदमाप्नोति, सथंसारं चाधि गच्छति॥
तृ० व० म० ७॥

विज्ञान सारथिर्यस्तु, मनः प्रग्रह वान्नरः।
सोऽध्वनः पारमाप्नोति तद्विष्णोः परमं पदम्॥
तृ०व०मं०९॥

छ०-जिसका सधा है सारथी सो ही अमर पद पायगा।
वो सारथी इस रथ को विष्णु, पद तलक पहुंचायगा॥
शाबाश मेरा सारथी, पहुँचा के वहां कीने खड़े।
जहां से न फिर संसार में, लेकर जनम आना पड़े॥

मन्त्र—इन्द्रियेभ्यः परा ह्यर्था, अर्थेभ्यश्च परं मनः।
मनसस्तु परा बुद्धिर्बुद्धेरात्मा महान्परः॥
तृ०व०मं० १०॥

मंत्र—महतः परमव्यक्तः मव्यक्तात्पुरुषः परः ।
पुरुषान्न परं किंचित्सा काष्ठा सा परागतिः ॥
तृ०ब०मँ०११॥

छ०—इन इन्द्रियों से बढ़ के तो, इनके विषय ही ज्येष्ठ हैं ।
विषयों से मन और मन से बुद्धि, धी से ज्ञाता श्रेष्ठ है ॥
मन के परे अव्यक्त और अव्यक्त के परे आत्मा ।
इस आत्मा को ही समझ, पूरण पुरुष परमात्मा ॥
वाक्य को मन में रु मन, बुद्धि में लीन प्रवीन कर ।
अव्यक्त में बुद्धि मिला, अव्यक्त मुझ में लीन कर ॥

मन्त्र—अशब्दमस्पर्शमरूपमव्ययं तथाऽरसं
नित्यमगन्ध वच्चयत् ।
अनाद्यनन्तं महतः परं ध्रुवं, निचार्य्यं
तन्मृत्यु मुखात्प्रमुच्यते ॥ मं०१५ ॥

छ०—शब्द स्पर्श रूप रस और, गंध से मैं दूर हूं ।
मैं अनादि हूँ मैं अनन्त हूं, आकाशवत भरपूर हूं ।
जो जान ले मुझको न मृत्यू, के वो मुख में आय है ।
सचा अमर हो जाय है वो फिर जनम नहिं पाय है ॥

मन्त्र—पराञ्चि खानि व्यतृणत्स्वयंभूस्तस्मा-
त्पराङ् पश्यति नान्तरात्मन् ।
कश्चिद्धोरः प्रत्यगात्मानमैक्षदावृत्त
चक्षुरमृतत्व मिच्छन् ॥ च०ब०मं०१॥

छ०—है इन्द्रियों को हुक्म मेरा बाहरी देखा करो ।
भीतरी काया में क्या इसका न तुम लेखा करो ॥

जिमि लालटेन को वस्तुयें, हरगिज नहीं है जानती।
इम इन्द्रियें मुझ आत्मा को है नहीं पहचानती॥
चिमटे को पकड़े हाथ चिमटे से न पकड़ा जाय है।
मेरे से चलती इन्द्रियें, मेरा पता नहिं पाय है॥

मन्त्र—येन रूपं रसं गंधं शब्दान्स्पर्शांश्च मैथुनान्।
एतेनैव विजानाति, किमत्र परिशिष्यत एतद्वैतत्॥
च० ब० मं० ३॥

छ०—शब्द स्पर्श रूप रस और गंध को जो जानता।
मैथुन व भावाभाव जिस सत्ता से है पहिचानता॥
सो हूं मैं हीं सो हूं मैं हीं, जिसको ये सम्यक ज्ञान है।
नहिं जागने पर स्वप्न का, दुख मानता धीमान् है॥

मंत्र—स्वप्नान्तं जागरितान्तं चोभौ, येनानुपश्यति।
महान्तं विभुमात्मानं, मत्वा धीरो न शोचति॥
च० ब० मं० ४॥

छ०—अब स्वप्न का हुआ अन्त और अब जाग्रत का अन्त है।
दोनों को पहिचाने उसे कहैं आत्मा सब सन्त हैं॥
मैं ही हूँ व्यापक आत्मा जो धीर जन ये जानता।
हो जाय प्रलय पर वो है किंचित् भी दुख नहीं मानता॥

श्रुति—यः पूर्वं तपसो जातमद्भ्यः पूर्वमजायत।
गुहां प्रविश्य तिष्ठन्तं, यो भूतेभिर्व्यपश्यत एतद्वै तत्॥
च० ब० मँ० ६॥

छ०—मैं सर्व भूतों से हुआ पहले हूं ये पहिचान तू।
मैं हिरन्गर्भ औ देवताओं से प्रथम हूं ये जान तू॥

छ०—ब्रह्मादि सारे देवता, मेरे से करत प्रकाश हैं।
वो मुक्त है मेरे में जिस का हो अटल विश्वास है।।

श्रुति—यदेवेह तदमुत्र यदमुत्र तदन्विह।
मृत्योः स मृत्युमाप्नोति, य इह नानेव पश्यति॥
क०-उ०-अ० २-व० ४-१०मं

छ०—मैं और ईश्वर और माया और सत्ता और है।
वो आत्म हत्यारा महा पापी प्रभू का चोर है।।
इस भेद का फल भोगने बध होके यमपुर जायगा।
जब एक जानेगा मुझे, तब हो परम पद पायगा।।

श्रुति—मनसैवेदमाप्तव्यं, नेह नानास्ति किंचन।
मृत्योः स मृत्युं गच्छति, य इह नानेव पश्यति॥
क०-उ०-अ० २-व० ४-११म०

छ०—मन से ही मुझको जान निर्मल, मन मुझे जाने सही।
प्रथकता नानापना, मेरे में है कुछ भी नहीं।।
अद्वैत में कर द्वैत बुद्धि नीच योनि पायगा।
भेद में भी अभेद देखेगा, अमर हो जायगा।।

श्रुति—अंगुष्ठमात्रः पुरुषो, मध्य आत्मनि तिष्ठति।
ईशानो भूत भव्यस्य न ततो विजुगुप्सत एतद्वै तत्।
क०-उ०-अ० २-व० ४-१२म०

छ०—इस देह रूपी पहाड़ में, मन ही गुफा है मानिये।
अंगुष्ठ के आकार वहां, है साक्षी पहिचानिये।।

उसे भूत भव्य औ वर्तमान का, एक सासक जान तू।
अपने को ही संसार का, सासक सबल पहिचान तू॥

श्रुति—पुर मेकादशद्वारमजस्यावक्रचेतसः।
अनुष्ठाय न शोचतिविमुक्तश्च विमुच्यत एतद्वै तत्।
क०उ०अ०२व०-५-म०१

छ०—दरवाजे ग्यारह इन्द्रियें, और कोट काया जानिये।
इस कोट का करतार अपनी, आत्मा को मानिये॥
शुभ आत्मा को जान के, पापों से नर छुट जात हैं।
सब शोक मोह जाते रहैं औ फिर जनम नहीं पात हैं॥

श्रुति—य एष सुप्तेषु जागर्ति कामं कामं,
पुरुषो निर्मिमाणः।
तदेव शुक्रं तद्ब्रह्म तदेवामृतमुच्यते,
तस्मिंल्लोकाः श्रिताः सर्वे तदु नात्येति
कश्चन एतद्वै तत्॥

॥क०उ०अ०२ व०५-८॥

छ०—जिससे सुषुप्ति में सिद्ध होता, ज्ञान और अज्ञान है।
सपने में सामग्री बिना होता ये जिससे भान है॥
सो मैं हूं अमृत ब्रह्म मेरे, सब जगत आश्रित रहै।
तू मान चाहै न मान मन, सिद्धान्त ये श्रुतियें कहैं।

श्रुति—अग्निर्यथैको भुवनं प्रविष्टो,
रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव।

एकस्तथा सर्व भूतान्तरात्मा,
रूपं रूपं प्रति रूपो बहिश्च ॥

क०-उ०-अ०२-व०५-मं०६

छं०–अग्नि अनादि एक है व्यापक है सब संसार में।
हस्ती में हस्ती सा बना नर नार सा नर नार में ॥
ऐसे ही मैं व्यापक विभु हूं, एक जग्दाधार में।
हस्ती में मैं हस्ती सा हूं, नर नार सा नर नार में ॥
जिस तौर अग्नि का धरम नित जलन और प्रकाश है।
सामान अग्नि में नहीं, निज धर्म होते भास हैं ॥
सच जान अग्नि की तरै, मेरा परम प्रकाश है।
सामान अग्नि की तरै फिर भी न होता भास है ॥
दो लकड़ियें मिल के विशेष, अग्नि प्रगट हो जाय जब।
ढूढ़े से नहीं मिलता अन्धेरा का, पता कहाँ जात तब ॥
वृत्ती में मेरा रूप भी, जब आ प्रकट हो जात है।
तब मूल माया का अंधेरा, फिर न रहने पात है ॥
सूरज से जो बादल बने, सूरज पै ढक्कन छाय है।
स्व आसरे औ स्व विषे, अज्ञान माना जाय है ॥
बादल ढके आँखों को नहीं, सूरज को ढकने पाय है।
अज्ञान से परमात्मा बिल्कुल न ढांपा जाय है ॥
उल्लू व चमगीदड़ रवि में, अन्धकार हैं जानते।
उल्लू के अनुभव को नहीं, सत्पुरुष सच्चा मानते ॥
इस भांति ही अज्ञान जिनको भासता, मतिमन्द हैं।
आंखों में उंगली डाल के, जो देखते दो चन्द हैं ॥
सामान अग्नि देख जिस जिस चीज बीच समाय हैं।
उसमें उसी के रूप की, बनकर नजर में आय हैं ॥

इस भांति सारी वस्तुओं में ब्रह्म भी सामान है।
उन वस्तुओं में वस्तुवत, वो आप होता भान है॥

श्रुति—वायुर्यथैको भुवनंप्रविष्टो,
रूपं रूपं प्रति रूपो बभूव।
एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा,
रूपं रूपं प्रतिरूपो बहिश्च॥

क०-उ०-अ०२-व०५-मं०१०

छ०—है एक वायु जगत में, विचरै सदा निर्द्वन्द है।
ना सर्द हो ना गर्म हो, नहिं गंध औ दुर्गन्ध है॥
वायू सरिस सत्ता मेरी का, चर अचर में बास है।
आकाशवत निर्लेप है, सुख दुख न आते पास हैं॥
सुइयें करें जो चेष्टा, चुम्बक की सत्ता जानिये।
सूइयों के संग में नाचता, चुम्बक नहीं पहिचानिये॥
मैं ब्रह्म हूं चुम्बक सरिस, सुई सरिस जग जान तू।
ज्ञाता हूं पुण्यरू पाप का, कर्ता मती पहिचान तू॥
अन्तःकरण के धर्म ले, आभास अन्दर भान है।
आभास के धर्मों का होता, बिम्ब अन्दर मान है॥
लाल फूल सफेद हीरा, पास धर कर ख्यालजी।
है स्वेत हीरा फूल की, लाली से भासै लालजी॥
इम आत्मा आभास अन्तःकरण तीनों पास हैं।
अन्तःकरण के धर्म जाते आत्मा में भास हैं
दीखै है हीरा लाल पर, वो लाल नहिं हो जाय है।
इमि आत्मा करता जचै कर्त्ता न माना जाय है॥

भगते हैं नभ में बादले, कहै चन्द दौड़े अन्ध है।
इमि आपको कर्त्ता कहै, निश्चै वही मतिमन्द है॥
कर्म सब करती प्रकृती जो नहीं यह जानते।
वो देह अभिमानी हैं जो अपने को कर्त्ता मानते॥
जिन तत्व ज्ञानी धीर सारा सार लीना जान है।
हरगिज नहीं अपने को कर्त्ता मानते धीमान हैं॥
अन्तःकरण औ देह में आभास करता जानिये।
है प्राण बाहन ज्ञान इन्द्रियें, हाटवत हैं मानिये॥
कर्मेन्द्रियें नौकर हैं, शब्दादि विषय ये काम हैं।
ये जान के सब कुछ करै, निर्लेप आतम राम है॥
प्रताप आतम ज्ञान का, सुरपति बताता आप है।
ब्रह्म हत्या तक करी फिर भी न व्यापा पाप है॥
कहैं वेद इन्द्र रू मैं कहूं, ऐसा मेरा प्रताप है।
मुझ आत्मा के ज्ञान से ही, हटते ये त्रय ताप हैं॥
मात हत्या बाप हत्या, गुरु हत्या जानिये।
सोने की चोरी गर्भ हत्या, पाँच पातक मानिये॥
मैं हूं अकर्त्ता जानने से पाप से छुट जात है।
वो भी परम पद पात जो ज्ञाता के रहता साथ है॥
मन में अकर्त्ता भाव रख, बाहर करै सारे करम।
जल कमलवत बुद्धि रखे,उसका नहीं बिगड़ै धर्म॥
वो मार दे इन सर्व लोगों को न तौ भी ताप है।
नहीं मारने वाला है और मरता न कोई आप है॥
जल से जो पैदा जीव सो, जल से रखें संयोग जी।
जल में मरै जन्मै है और जल में ही भोगें भोग जी॥

जीवों के धरमा धर्म है जल को कभी लगते नहीं।
ऐसे ही ये मन के धरम, मुझको कभी ठगते नहीं॥
जिसको कि कर्त्ता भाव का ये काट खाया नाग है।
उसके लिये ही वेद ने वरना, विषय वैराग है॥
निज को अकर्त्ता जान बुद्धि से करै सारे करम।
इस भाव से सब कुछ करै, फिर भी नहीं बिगड़ै धरम॥
राजा को समझै चोर वोही दंड भारी पाय है।
इमि आपको कर्त्ता जो समझैगा सो धोखा खाय है॥
गाढ़ निद्रा में आत्मा, रहता कहैं धीमान् है।
कर्त्ता पने का देख वहाँ होता न किंचित भान है॥

श्रुति—सूर्यो यथा सर्व लोकस्य,
चक्षुर्न लिप्यते चाक्षुषै र्बाह्यदोषैः।
एकस्तथा सर्व भूतान्तरात्मा,
न लिप्यते लोक दुःखेन बाह्यः॥

क०उ०अ०२ व ५।११ मं०

छं—आखों की कुछ संख्या नहीं, सब जानते इक भान है।
ये एक सूरज सर्व आंखों को कराता ज्ञान है॥
इम देह मन भी अपार हैं पर आत्मा तो एक है।
उस एक से ही असंख्य मन में, जगत पड़ता देख है॥
आँखों के धर्मों में ये ज्यों, सूरज न बंधन पात है।
इम मन के धर्मों में नहीं ये आत्मा बंध जाय है॥
सब कुछ दिखा कर दूर ही रहता रवि का नूर है।
सब कुछ करा कर आत्मा, मन के धरम से दूर है॥

ऐसा प्रतापी आत्मा, सब का है निश्चै जान तू।
क्यों चोर राजा को समझ बनता है बेईमान तू॥
जैसे कोई बिन भावना डालै किसी को मार है।
तेहि कह के पागल छोड़ दे, फांसी न दे सरकार है॥
इस भांति जो मेरे में है,'उन्मत्त वो कुछ भी करै।
मर जाय पर ना भूल के मारग पै हरगिज पग धरै॥
लखपती बाज़ार में जब साग लेने जात है।
धेले के धनिये के नहीं वो सौ रुपये दे आत है॥
उन्मत्त है धन में परन्तु मुफ्त में न लुटाय है।
उन्मत्त आत्म ज्ञानी नहीं अन्याय करने पाय है॥
अमी से मनुष्य मर जाय तो, अमृत नहीं वो ज़हर है।
सूरज के भी संमुख भला रहता कहीं अन्धेर है॥
इमि जान जाता जो मुझे, करता वो पर उपकार है।
सब में समझकर आपको सब जग से करता प्यार है॥
यदि बाहिरी कुछ जो तुझे, विपरीत द्रष्टी आय है।
पर भावना उस में सदा, उपकार ही की पाय है॥
लालच से व भय से कभी, कर्त्ता नहीं अन्याय है।
ज्ञानी के आचरणों से बनते, न्याय और अन्याय है॥
ब्रह्मज्ञानियों ने करके अनुभव जिसको अच्छा कह दिया।
सो वो ही धर्म अधर्म इस संसार में माना गया॥
जिमि राज सासन सब पै पर, राजा अछूता रहत है।
नीती के शासन से है ज्ञानी, मुक्त यों श्रुति कहत है॥
नीती का ज्ञानी बाप है, यह वेद चारों कहत हैं।
बाप बेटे के न सासन में कभी भी रहत है॥

सन्तों पै जो विधि नेम का, झूठा अड़ंगा लगावते ।
वो हैं पिता को पुत्र के आधीन करना चाहते ॥

श्रुति—एको वशी सर्व भूतान्तरात्मा,
एकं रूपं बहुधा यः करोति ।
तमात्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीरास्तेषां,
सुखं शाश्वतम् नेतरेषाम् ॥

क०उ०अ० २व०५-१२ मं०

छं—मैं एक से अगणित बना हूं, नाम रूप को धार के ।
मेरे ही सारे नाम और ये रूप हैं संसार के ॥
जिमि खांड से बनते खिलौने, इमि प्रभू से नारि नर ।
चेतन का सर्व विवर्त है, भासै है भिन्न जो चर अचर ॥
कारण भी होता जगत में दो भाँति का सच जानिये ।
पहिला है गुण परिणाम और दूसरा विवर्त पिछानिये ॥
वास्तव में कार्य कारण से जहाँ बन जात है ।
जिमि दूध से है दधि बने परिणामी सो कहलात है ॥
सच्चा दधि जहां बन गया, वहां दूध होता नाश है ।
दधि से बदल कर दूध बनने को न पीछे आस है ॥
है दूध पतला और दधि है दीखता गाढ़ा अहो ।
और स्वाद भी मीठे से खट्टा होत है यह तुम कहो ॥
जो कार्य कारण के गुण परिणाम से बन जात है ।
उस कार्य में देखलो कारण के गुन सब आत हैं ॥
मत ब्रह्म को संसार का परिणामी कारण जान तू ।
वो ब्रह्म तो बनके जगत बिगड़े नहीं पहिचान तू ॥

जग बन बिगड़ता ब्रह्म का न स्वरूप औ न स्वभाव है।
वो ब्रह्म ही पीछा बने जब जग का होत अभाव है॥
सोना न जेवर रूप धरके दूध सम मर जात है।
जग लीन होकर ब्रह्म तो वैसा ही रहने पात है॥
मिट्टी से मटके लोष्ट से हथियार ऐसे ही जानिए।
इम ब्रह्म को भी विवर्त कारण जगत् का सच मानिये॥
परिणामी कारण वो जो दूसरा वास्तविक बन जात है।
विवर्त कारण वो है जो कि बिन बने दरसात है॥
रज्जु में बनता साँप गुण परिणाम से मत जानिये।
जो भूल से ही भासता कारण 'विवर्त मानिये॥
सीपी में चाँदी वास्तविक पैदा नहीं हो जाय है।
इम बिन बने जग भासता है सो विवर्त कहलाय है॥
पानी में उल्टा पेड़ को किसने कहो लटका दिया।
इम ब्रह्म-मय संसार केवल भूल ने पैदा किया॥
लकड़ी से भासे भूत उस में काष्ट का गुण आय है।
मन से बना है भूत उस में न काष्ट गुण दरसाय है॥
इम ब्रह्म से बनता जगत् तो ब्रह्म-वत रहता सदा।
कार्य मिथ्या में न गुण कारण के आते सर्वदा॥
मृग तृष्णा का तू देखले पानी नजर में आय है।
झूठा है पानी इस लिये नहीं सील होने पाय है॥
मिथ्या ही पानी से न गीली वहाँ मही हो जाय है।
मिथ्या ही भासै इसलिये कारण के गुण नहीं आय है॥
बिन हुआ प्रतिबिम्ब दर्पण में प्रत्यक्ष लखाय है।
पर बिम्ब के सच्चे धर्म प्रतिबिम्ब में नहीं आय है॥

ज्यों स्वप्न द्रष्टा में स्वप्न सृष्टी प्रत्यक्ष लखाय है।
पर स्वप्न सृष्टी में न गुण द्रष्टा का एक भी आय है॥
देश काल और साधनों से चीज जहां बन जात है।
बदले न तीनों काल में सच्चा वही कहलाय है॥
अथवा जो गुण परिणाम और प्रारंभ से बन जाय है।
जैसे पिता से पुत्र बस सच्चा यही कहलाय है॥
न्याय तो परमाणुओं को है अनादि मानता।
परमाणुओं के मेल से संसार बनत बखानता॥
और साँख्य परमाणों नहीं माने प्रकृति सार है।
ये कहत माया के ही गुण परिणाम से संसार है॥
वेदान्त कहता देख पिण्डा कार महि कहलाय है।
इस भूल से भगवान ही जर्रे बना दर्साय है॥
सपने में किस रज वीर्य से जग देह हो तैयार है।
सपने में किन परमाणुओं से भासता संसार है॥
ज़र्रों का जो संयोग होने से ही उत्पति जानते।
वियोग हो परमाणुओं का तब तो परलय मानते
संयोग और वियोग दोनों धर्म उल्टे जानिये।
अन्धकार प्रकाश सम सो एक में किम मानिये॥
परमाणुओं का वास्तविक सो भाव क्या बतलाइये।
नित मेल करते या बिछुड़ते ये हमें जतलाइये॥
संयोग नित मानोगे तो फिर परलय न होने पायगी।
और मोक्ष भी होगी नहीं भारी ये आफ़त आयगी॥
वियोग नित मानोगे तो नहीं बन सके संसार है।
श्रुति संतों के प्रतिकूल है मत न्याय का बेकार है॥

प्रकृति के परिणाम से भी जग न होने पात हैं ।
श्रुतियें कहें सब ब्रह्म है जो दृश्य दृष्टि आत है ॥

सत वस्तु निर्गुण को नहीं मन इन्द्रियें पहिचानती ।
भगवान को ही भूल से प्रिय गुण प्रकृति जानती ॥

दृढ़ भावना से ज्ञान शक्ति बर्फ सी जम जाय है ।
सम्चित स्वयं बनके प्रकृति आप दृष्टि आय है

जन्मे पिता से पुत्र तो सच्चा उसे पहिचानिये ।
सुत सांग धारे बाप तब सच्चा उसे किम मानिये ॥

बनता प्रभू से जगत् तो कारण-कार्य भी मानते ।
भापा बना कुछ भी नहीं फिर सत्य कैसे जानते ॥

माया के गुण परिणाम से नहीं जगत माना जात है ।
माया विवर्त से भासती श्रुति व्यास जी बतलात है ॥

विवर्त वाद को राम से वाशिष्ठ कहत प्रदान है ।
विवर्त वाद ही कृष्ण शँकराचार्य को भी मान है ॥

जग उत्पति गीता में गुण परिणाम से ही बखानते ।
माया की उत्पत्ति कृष्ण गुण परिणाम से नहीं मानते ॥

माया तो मिथ्या भासती यह कृष्ण को स्वीकार है ।
इस वास्ते मिथ्या ही माया का बना संसार है ॥

उपनिषद, गीता व शारीरिक-सूत्र का यह सार है ।
चेतन का सर्व विवर्त है जो भासता संसार है ॥

शंकर ने भी बृहद् आरुणी के भास में लिया मान है ।
चेतन के बिन जाने हुआ सब जगत् का यह भान है ॥

उत्पत्ति जग की जहाँ लिखी साफ ऐसा लिख दिया ।
कि मूरखों के वास्ते उत्पत्ति का वर्णन किया ॥

कुछ वेद का उत्पत्ति से मतलब नहीं है जानिये।
लय चिन्तवन करने को उत्पत्ति का मर्म पिछानिये ॥
पर वास्तव में जगत की उत्पति ही है नहीं भयी।
इस बात को समझें न सब समझेगा अधिकारी कोई ॥
नानक व दादू कबीर भी इस बात को ही बखानते।
स्वामी विवेकानन्द तीर्थ राम भी ये मानते ॥
तुलसी वा गिरधर और केशवदास ये ही बखानते।
समरथ शिवा जी तिलक हैं इस पंथ को ही मानते ॥
अकबर व दाराशिकोह को भी विवर्तवाद ही मान है।
मंसूर और तवरेज ने इस पंथ पै दिये प्रान हैं ॥
कोन्ट थोरो ऐमरसन ये ही बताते सार हैं।
कैसर व विलियम गांधी इसका ही करत प्रचार हैं ॥
कहां तक लिखूं सब नाम 'चिरंजी' संत पंथ अनंत हैं।
विवर्तवाद ही मानते भारत के सारे संत हैं ॥

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

॥ अहम ब्रह्म उपासना ॥

'अहम ब्रह्म' ब्रह्मा ने पुकार कहा वेदों में,
'अहम ब्रह्म' व्यास जी वेदान्त में बता गये।
'अहम ब्रह्म' कृष्ण जी ने गीता में गान किया,
'ब्रह्म मैं' वशिष्ठ ये वशिष्ठ में जता गये॥

'अहम ब्रह्म' दत्तात्रेय अष्टावक्र कपिलदेव,
अपनी अपनी गीता बीच खाता सा खता गये।
राम बाल्मीकि श्री हर्ष चित सुकादि मुनि,
'अहम ब्रह्म' वाद का हैं झण्डा फहरागये॥

पदम पाद, विद्यारण्य हस्तामल तोटकरु,
सुरे सुराचार्य भी 'अहम ब्रह्म' गा गये।
शङ्कराचार्य अवतार भये शङ्कर के,
'अहम ब्रह्म' जाप जपो सबको बतला गये॥

नानक, दादू, कबीर, राम चरण, तुलसीदास,
सुन्दरदास, निश्चलदास यह ही जतला गये।
पलटू, मन्सूर, निर्भयराम, रामतीर्थ हू,
'अहम ब्रह्म' जपते जपते ब्रह्म में समा गये॥

'अहम ब्रह्म' जाप से प्रहलाद के त्रिय ताप छूटे,
'अहम ब्रह्म' जपके ध्रुव अमर पद पा गयो।
मीरा जप 'अहम ब्रह्म' विष को कर पान गयी,
जहर भयो अमृत मुख राम रङ्ग छा गयो॥

'कुम्भेइजनी' कह करके शम्सो तबरेज यार,
बादशाह के मरे हुए सुत को जिला गयो।
प्राण चाहे जाय नहिं छोड़ूं 'अहम ब्रह्म' जाप,
धन्य गुरू देव ज्ञान अमृत पिला गयो॥

❁ सूचना ❁

सर्व जिज्ञासु आत्म ज्ञान की इच्छा रखने वाले लोगों को जैसा कि इसमें तीन उपनिषदों से अहंग्रह उपासना छपाई है इसी प्रकार दशों उपनिषदों से अहंग्रह उपनिषदों की व्याख्या श्री अनन्तराम जी ब्रह्मचारी से विनती करके लिखवाई हुई है जो आप सब लोगों को लाभदायक होयगी जिसका शीघ्र ही छपवाने का प्रबन्ध किया जा रहा है ।

यह ग्रन्थ तो अमूल्य ग्रन्थ है परन्तु जो कुछ यत्किंचित मूल्य इसका रक्खा गया है वह कागजों की महंगाई और पाठक विना मूल्य पुस्तकों को यों ही न डाल दें नाम मात्र मूल्य रख दिया गया है ।

पुस्तक मिलने का पता—

अनन्त चिरञ्जी पुरुषोत्तम वेदान्त पुस्तकालय,
केदाराश्रम, परशुराम दङ्गल,
कुदसिया घाट, देहली ।

सद्धर्म प्रेस, चरखेवालान, देहली में छपा ।